13. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, इन अपीलों को प्रत्यर्थी सं. 2 (ओरियंटल बीमा कंपनी लि.) को अधिकरण द्वारा अवधारित प्रतिकर रकम के संदाय देने के निर्देश की सीमा तक इस स्वतंत्रता के साथ कि बीमा कंपनी स्वयं द्वारा संदत्त प्रतिकर की रकम को विधि के अनुसरण में, अपराध करने वाले ट्रैक्टर के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 1) से इसे वसूल सकता है, और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि करने की सीमा तक मंजूर किया जाता है ।

14. पूर्वोक्त उल्लिखित निबंधनों में, इन अपीलों को निपटाया जाता है, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

तद्नुसार, अपीलें निपटाई गईं ।

क.

[2019] 1 उम. नि. प. 136

नारायण ग्रामनी और अन्य

बनाम

मरियम्मल और अन्य

11 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे और न्यायमूर्ति विनीत शरण

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठति सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100] – अपीली अधिकारिता – तत्समय प्रवृत्त संविधि के अधीन अंतर्निहित अपीली अधिकारिता के परे निर्णय और आदेश पारित करना – ऐसा निर्णय और आदेश विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं होना – ऐसा निर्णय और आदेश अपास्त होना – यदि कोई अपीली अधिकारिता रखने वाला न्यायालय तत्समय प्रवृत्त संविधि के अधीन प्रदत्त अपनी अपीली शक्तियों के परे जाकर कोई निर्णय या आदेश पारित करता है तो वह विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं होता है और यदि ऐसा निर्णय और आदेश अपास्त कर दिया जाता है तो वह समुचित और विधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, तीन वादियों ने संख्या 294/1 वेम्बानूर ग्राम, कडापक्कम फिरका (पट्टा संख्या 491) पुराना पैमाइश संख्या 201/8,

वर्णित क्रम सं. 399/4, एकड़ 1.08 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वाद भूमि' कहा गया है) में स्थित वाद भूमि के संबंध में, घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध फाइल सिविल वाद में एक कुटुम्ब के सदस्य होने का दावा किया है । विचारण न्यायालय ने दो विवाद्यक, अर्थात् (1) क्या वादी, घोषणा और स्थायी व्यादेश की ईप्सा करने के हकदार हैं, और (2) यदि ऐसा है तो किन अनुतोषों के लिए । पक्षकारों ने अपने साक्ष्य (मौखिक और दस्तावेजी) प्रस्तुत किए । विचारण न्यायालय ने तारीख 23 नवम्बर, 1993 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा वादियों के वाद को डिक्री कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया कि वादी स्वयं द्वारा फाइल दस्तावेजों के आधार पर वाद भूमि पर अपने स्वामित्व को साबित करने में समर्थ रहे हैं, कि वादी, वाद भूमि के कब्जे में है, कि इसलिए, वे वाद भूमि पर अपने हक की घोषणा करने के दावे करने के हकदार है, क्योंकि वे इसके स्वामियों के रूप में, वाद भूमि पर अपने (वादियों) शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी व्यादेश का दावा करने के भी हकदार हैं । प्रतिवादियों ने इससे व्यथित महसूस किया और उन्होंने इसके विरुद्ध अपर उप न्यायाधीश के समक्ष प्रथम अपील (1993 की अपील वाद संख्या 72) फाइल की । अपील न्यायालय ने तारीख 5 अगस्त, 1994 के निर्णय द्वारा प्रतिवादियों की अपील खारिज कर दी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी । प्रतिवादियों ने मामले को और आगे बढ़ाया तथा उच्च न्यायालय मद्रास के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील को मंजूर कर लिया और दोनों निचले न्यायालयों के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और परिणामस्वरूप, वाद खारिज होने के कारण वादियों को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से वर्तमान अपील फाइल करने का अवसर उद्भूत हुआ । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश) यह देखने में असफल रहा है कि यद्यपि, उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर प्रत्यर्थियों के पक्ष में दिया गया था फिर भी वादियों का वाद खारिज नहीं किया जा सकता था, कम से कम तब तक जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा वाद भूमि पर वादियों के स्वामित्व के मुख्य प्रश्न की परीक्षा नहीं कर ली जाती जिसे दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गुणागुणों पर वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया था । दूसरे शब्दों में, न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह वाद भूमि पर वादियों के

हक के संबंध में विवाद्यक की परीक्षा करता, जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वादी दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को साबित करने में समर्थ रहे हैं, जबकि प्रतिवादी प्राख्यान के माध्यम से अपने हक को साबित करने में असफल रहे हैं । द्वितीयतः, उच्च न्यायालय ने एक अन्य त्रुटि कारित की है जब वह वाद भूमि पर वादियों के स्वामित्व के विवाद्यक पर विधि का कोई सारवान् प्रश्न बनाने में असफल रहा । जहां तक कोई विधि का सारवान् प्रश्न नहीं बनाने का संबंध है, उच्च न्यायालय को अपनी द्वितीय अपीली अधिकारिता में उक्त विवाद्यक की परीक्षा करने की अधिकारिता नहीं थी । दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय मात्र एक प्रश्न बना सकता था, जो वाद भूमि के स्वामित्व के विवाद्यक से संबंधित नहीं था, उसे स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने की अधिकारिता नहीं थी । संहिता, 1908 की धारा 100(5) के प्रकाश में यह अनुज्ञेय नहीं था, जो उच्च न्यायालय को बनाए गए प्रश्न पर ही अपील विनिश्चित करने को सशक्त करता था और न कि इसके परे । तृतीयतः, उच्च न्यायालय धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब ले सकता था और द्वितीय अपील की सुनवाई के समय पर भी एक या दो अतिरिक्त प्रश्न, जैसी भी दशा हो, बना सकता था । यह सही परिप्रेक्ष्य में, वाद भूमि के स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने के लिए उच्च न्यायालय को समर्थ बनाता है । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया गया । चतुर्थतः, न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय, बनाए गए प्रश्न की परीक्षा करते समय सरसरी तौर पर स्वामित्व के विवाद्यक पर विचार कर सकता था, जिसे स्वामित्व के विवाद्यक पर किसी सारवान् विधि के प्रश्न बनाने के अभाव में नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, उच्च न्यायालय यह देखने में भी असफल रहा है कि पूर्व-न्याय के विवाद्यक और स्वामित्व के विवाद्यक, स्वतंत्र विवाद्यक थे और एक विवाद्यक के विनिश्चय से दूसरे विवाद्यक का उत्तर नहीं मिलता है । दूसरे शब्दों में, दोनों विवाद्यक का, उनके क्रमशः अपने गुणागुणों पर एक दूसरे से स्वतंत्र परीक्षा की जानी थी । तथापि, यह संहिता, 1908 की धारा 100(4) और (5) के अधीन यथाउपबंधित दोनों विवाद्यकों पर सारवान् प्रश्नों को बनाने के पश्चात् ही संभव था । तथापि, इस मामले में यह नहीं किया गया था । पूर्वोक्त उल्लिखित चारों कारणों के प्रकाश में, न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि आक्षेपित निर्णय वैधतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है । चूंकि, उच्च न्यायालय विधि के

सारवान् प्रश्न/प्रश्नों को बनाने के अभाव में इसके गुणागुणों पर वादियों के स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने में असफल रहा है, इसलिए, इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए मामले को वापस उच्च न्यायालय के पास भेजा जाना था कि क्या दोनों निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में क्रमशः अपनी अधिकारिता में सही थे कि वादी स्वयं द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों (मौखिक/दस्तावेजी) के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को साबित करने में समर्थ रहे हैं और यदि ऐसा है तो क्या ऐसे निष्कर्ष को कायम रखा जाना चाहिए या नहीं । (पैरा 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2018] (2018) 4 एस. सी. सी. 562 :
सूरत सिंह बनाम **श्री भगवान और अन्य** ; 16

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 :
संतोष हजारी बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की सिविल अपील संख्या 5057.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एम. एस. एम. एसैताम्बी, वी. बालाजी, राकेश के. शर्मा, सी. कन्नन, (सुश्री) श्रीप्रदा कृष्णन्, ए. टी. एम. संपत्त

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – यह अपील, अपीलार्थियों ने मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 1995 की द्वितीय अपील संख्या 652 में पारित तारीख 9 जुलाई, 2007 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी संख्या 2 से 5 द्वारा फाइल द्वितीय अपील को मंजूर कर लिया था और अपर अधीनस्थ न्यायाधीश, चिंगलपट्टू द्वारा 1993 की ए.एस. संख्या 72 में पारित तारीख 5 अगस्त, 1994 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया था

तथा इसमें के अपीलार्थियों द्वारा फाइल वाद को खारिज कर दिया था ।

2. अपील में अंतर्वलित विवाद्यकों जिनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है, का मूल्यांकन करने के अनुक्रम में, निम्नलिखित कुछ तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

3. अपीलार्थी सं. 1 और 2, वादी हैं, जबकि अपीलार्थी सं. 3, तृतीय वादी - तिरुनउकरासू, जिसकी मुकदमा लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी, का विधिक प्रतिनिधत्व है । प्रत्यर्थी, सिविल वाद में प्रतिवादी है ।

4. तीन वादियों ने संख्या 294/1 वेम्बानूर ग्राम, कडापक्कम फिरका (पट्टा संख्या 491) पुराना पैमाइश संख्या 201/8, वर्णित क्रम सं. 399/4, एकड़ 1.08 (जिसके इसमें इसके पश्चात् 'वाद भूमि' कहा गया है) में स्थित वाद भूमि के संबंध में, घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध फाइल सिविल वाद में एक कुटुम्ब के सदस्य होने का दावा किया है ।

5. वादियों ने वाद भूमि के संबंध में इस्टेट मैनेजर द्वारा जारी पट्टा में अपने हक पूर्वाधिकारी के माध्यम से वाद भूमि में हक होने का दावा किया है । वादियों के अनुसार, वादियों के बीच कुटुम्ब विभाजन किया गया था, जिसमें उनके हिस्से में वाद भूमि आती है । वादियों ने यह अभिकथित किया कि उनका वाद भूमि पर कब्जा है और उन्होंने उसमें धन निगमित किया है और राजस्व करों का संदाय किया है । वादियों ने यह अभिकथित किया कि प्रतिवादियों ने बिना किसी विधिक प्राधिकार के वाद भूमि पर उनके कब्जे में विघ्न डालने का प्रयास किया है और वाद भूमि पर अपने हक का भी प्राख्यान किया है, जो उनके पक्ष में नहीं है और अतएव, उन्हें सिविल वाद फाइल करने और वाद भूमि के संबंध में घोषणा और स्थायी व्यादेश का दावा करने की आवश्यकता महसूस हुई ।

6. प्रतिवादियों ने अपना लिखित कथन फाइल किया और वाद भूमि पर वादियों के दावे से इनकार किया । उनके अनुसार, वे मुथु मुदालियर और उसके पुत्र राजा राम मुदालियर जो प्रतिवादियों के अनुसार वाद भूमि के स्वामी थे, से 200/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 15 फरवरी, 1967 के विक्रय विलेख के माध्यम से वाद भूमि का क्रय करने के नाते वाद भूमि के स्वामी है । प्रतिवादी सं. 1 ने भी वाद भूमि के कब्जे में होने और उसकी जुताई करने का दावा किया है ।

7. विचारण न्यायालय ने दो विवाद्यक, अर्थात् (1) क्या वादी, घोषणा

और स्थायी व्यादेश की ईप्सा करने के हकदार है, और (2) यदि ऐसा है तो किन अनुतोषों के लिए । पक्षकारों ने अपने साक्ष्य (मौखिक और दस्तावेजी) प्रस्तुत किए । विचारण न्यायालय ने तारीख 23 नवम्बर, 1993 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा वादियों के वाद को डिक्री कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया कि वादी स्वयं द्वारा फाइल दस्तावेजों के आधार पर वाद भूमि पर अपने स्वामित्व को साबित करने में समर्थ रहे हैं, कि वादी, वाद भूमि के कब्जे में है, कि इसलिए, वे वाद भूमि पर अपने हक की घोषणा करने के दावे करने के हकदार है, क्योंकि वे इसके स्वामियों के रूप में, वाद भूमि पर अपने (वादियों) शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी व्यादेश का दावा करने के भी हकदार हैं ।

8. प्रतिवादियों ने इससे व्यथित महसूस किया और उन्होंने इसके विरुद्ध अपर उप न्यायाधीश के समक्ष प्रथम अपील (1993 की अपील वाद संख्या 72) फाइल की । अपील न्यायालय ने तारीख 5 अगस्त, 1994 के निर्णय द्वारा प्रतिवादियों की अपील खारिज कर दी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी ।

9. प्रतिवादियों ने मामले को और आगे बढ़ाया तथा उच्च न्यायालय मद्रास के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न पर द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया :–

> **"क्या वही न्यायाधीश एक अपील को इस आधार पर खारिज कर सकता है कि न तो निर्णय द्वारा न ही पक्षकारों में से किसी के भी प्रांग-न्याय या विबंधन के अभिवाक् के अभाव में, विभिन्न पक्षकारों के विरुद्ध एक पूर्ववर्ती अपील में अपीलार्थियों के मामले को पहले ही नामंजूर कर दिया गया है, विनिर्दिष्टतः तब जब विवाद्यक, द्वितीय अपील के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष विनिश्चय के लंबित है ।"**

10. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील को मंजूर कर लिया और दोनों निचले न्यायालयों के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और परिणामस्वरूप, वाद खारिज होने के कारण वादियों को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से वर्तमान अपील फाइल करने का अवसर उद्भूत हुआ ।

11. संक्षिप्त प्रश्न जो इस अपील में विचार से उद्भूत हुआ है, वह

यह है कि क्या उच्च न्यायालय, प्रतिवादियों की अपील को मंजूर करने और परिणामस्वरूप, वादी के वाद को खारिज करने में न्यायानुमत था जिसे दोनों निचले न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया था ।

12. विद्वान् काउंसेल श्री एम. एस. एम. एसैताम्बी, अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित हुए । नोटिस के बावजूद, प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

13. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, हम अपील मंजूर करते हैं और आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हुए, यथा नीचे उपदर्शित विधि के समुचित सारवान् प्रश्न को विरचित करने के पश्चात्, विधि के अनुसरण में गुणागुणों पर नए सिरे से अपील का विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय के पास वापस भेजते हैं ।

14. हम, मामले के तथ्यों की परीक्षा करने के पूर्व, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'संहिता' कहा गया है) की धारा 100 के क्षेत्र को देखना आवश्यक समझते हैं, जो उच्च न्यायालय को द्वितीय अपीलों को विनिश्चित करने के लिए सशक्त करता है । वस्तुतः, इसकी, इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों में परीक्षा की गई है और इस प्रकार अब यह अनिर्णीत विषय नहीं रहा है ।

15. संहिता, 1908 की धारा 100 इस प्रकार है :–

"100 द्वितीय अपील – (1) उसके सिवाय जैसा इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की उच्च न्यायालय में अपील हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित है ।

(2) एकपक्षीय पारित अपीली डिक्री की अपील इस धारा के अधीन हो सकेगी ।

(3) इस धारा के अधीन अपील में अन्तर्वलित विधि के उस सारवान् प्रश्न का अपील के ज्ञापन में प्रमिततः कथन किया जाएगा ।

(4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में सारवान् विधि का प्रश्न अन्तर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा ।

(5) अपील इस प्रकार बनाए गए, प्रश्न पर सुनी जाएगी और प्रतिवादी की अपील की सुनवाई में यह तर्क करने की अनुज्ञा दी जाएगी कि ऐसे मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है :

परंतु इस धारा की किसी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह, विधि के किसी अन्य ऐसे सारवान् प्रश्न पर जो न्यायालय के द्वारा नहीं बनाया गया है, न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्वलित है, न्यायालय के कारणों को लेखबद्ध करके अपील सुनने की शक्ति वापस लेती है या उसे न्यून करती है ।

16. धारा 100 की उपधारा (1) में यह कथित है कि उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील मात्र तभी ग्रहण की जा सकेगी यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई 'सारवान् प्रश्न' अंतर्वलित है । उपधारा (3) अपीलार्थी पर यह आबद्धता सृजित करती है कि वह अपील में अंतर्वलित 'विधि के सारवान् प्रश्न' का अपील के ज्ञापन में उल्लेख करे । उपधारा (4) यह उपबंध करती है कि जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा । दूसरे शब्दों में, जब एक बार उच्च न्यायालय का अपीलार्थी या उसके काउंसेल, जैसी भी दशा हो, की सुनवाई करने के पश्चात् यह समाधान हो जाता है कि अपील में सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा और उसके बाद उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए विधि के प्रश्न के साथ अपील के ज्ञापन का नोटिस प्रत्यर्थी को जारी करने का निर्देश देगा । उपधारा (5) यह उपबंध करती है कि अपील, उपधारा (4) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए प्रश्न पर ही सुनी जाएगी । दूसरे शब्दों में, द्वितीय अपील विनिश्चित करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता, उपधारा (4) के अधीन उच्च न्यायालय के अधीन प्रश्न तक ही सीमित है । तथापि, अपील की सुनवाई के समय पर प्रत्यर्थी को उपधारा (5) के अधीन यह आक्षेप उद्भूत करने का अधिकार देता है कि उपधारा (4) के अधीन उच्च न्यायालय के द्वारा बनाए गए प्रश्न अपील में अंतर्वलित नहीं है । सुनवाई के समय पर ऐसे आक्षेप उद्भूत करने के लिए प्रत्यर्थी को यह अधिकार इस कारण से दिया गया है कि क्योंकि उच्च न्यायालय स्वीकृति प्रक्रम पर प्रश्न बनाता है जो प्रत्यर्थी को अपील की नोटिस जारी करने के पूर्व होता है । दूसरे शब्दों में प्रश्न, प्रत्यर्थी के पीछे बनाया जाता है और इसलिए

उपधारा (5) उसे सुनवाई के समय पर ऐसा आक्षेप उद्भूत करने के लिए समर्थ बनाता है कि बनाया गया प्रश्न अपील में उद्भूत नहीं है । तथापि, उपधारा (5) का परंतुक भी उच्च न्यायालय को किसी अन्य सारवान् विधि के प्रश्न पर अपील की सुनवाई करने की शक्ति देता है जो उपधारा (4) के अधीन आरंभतः नहीं बनाया गया था । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा इस शक्ति का प्रयोग, अपील की सुनवाई के समय पर ऐसे अतिरिक्त विधि के प्रश्न को बनाने के लिए कारण समनुदेशित करने के पश्चात् ही किया जा सकता है । (देखें : **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी**[1] और **सूरत सिंह** बनाम **श्री भगवान और अन्य**[2])

17. द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय की शक्तियों के क्षेत्र और परिधि को ध्यान में रखते हुए, जब हम मामले के तथ्यों का उल्लेख करते हैं तो हम यह पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थियों की द्वितीय अपील मंजूर करने में त्रुटि कारित की है और सारवान् विधि के प्रश्न का उत्तर देते हुए वादी के वाद को खारिज करने में भी त्रुटि कारित की है । यह हम एक से अधिक कारणों से कह सकते हैं ।

18. प्रथमतः, आक्षेपित आदेश के परिशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि उच्च न्यायालय ने एक मात्र विधि के सारवान् प्रश्न को बनाते हुए द्वितीय स्वीकार की थी, अर्थात्, क्या प्रथम अपील न्यायालय, वाद भूमि के संबंध में एक पूर्ववर्ती मुकदमे, जो उन्हीं पक्षकारों के बीच में नहीं था, को विचार में लेते हुए, प्रत्यर्थियों की प्रथम अपील खारिज करने में न्यायोचित था ।

19. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रथम अपील न्यायालय न्यायोचित नहीं था क्योंकि पूर्ववर्ती मुकदमा वर्तमान वादियों और प्रतिवादियों के बीच में नहीं था, अपितु, यह विभिन्न पक्षकारों के बीच में था और इसलिए, ऐसे मुकदमे में दिया गया कोई विनिश्चय, वर्तमान पक्षकारों के बीच मुकदमे में पूर्व-न्याय के रूप में प्रवर्तित नहीं हो सकेगा । इसके परिणामस्वरूप ही अपील मंजूर की गई था और वाद खारिज किया गया था ।

20. हमारी राय में, उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश) यह देखने में असफल रहा है कि यद्यपि, उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर प्रत्यर्थियों के पक्ष में दिया गया था फिर भी वादियों का वाद खारिज नहीं किया जा सकता था,

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 179.
[2] (2018) 4 एस. सी. सी. 562.

कम से कम तब तक जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा वाद भूमि पर वादियों के स्वामित्व के मुख्य प्रश्न की परीक्षा नहीं कर ली जाती जिसे दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गुणागुणों पर वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया था ।

21. दूसरे शब्दों में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह वाद भूमि पर वादियों के हक के संबंध में विवाद्यक की परीक्षा करता, जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वादी दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को साबित करने में समर्थ रहे हैं, जबकि प्रतिवादी प्राख्यान के माध्यम से अपने हक को साबित करने में असफल रहे हैं ।

22. द्वितीयतः, उच्च न्यायालय ने एक अन्य त्रुटि कारित की है जब वह वाद भूमि पर वादियों के स्वामित्व के विवाद्यक पर विधि का कोई सारवान् प्रश्न बनाने में असफल रहा ।

23. जहां तक कोई विधि का सारवान् प्रश्न नहीं बनाने का संबंध है, उच्च न्यायालय को अपनी द्वितीय अपीली अधिकारिता में उक्त विवाद्यक की परीक्षा करने की अधिकारिता नहीं थी । दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय मात्र एक प्रश्न बना सकता था, जो वाद भूमि के स्वामित्व के विवाद्यक से संबंधित नहीं था, उसे स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने की अधिकारिता नहीं थी । संहिता, 1908 की धारा 100(5) के प्रकाश में यह अनुज्ञेय नहीं था, जो उच्च न्यायालय को बनाए गए प्रश्न पर ही अपील विनिश्चित करने को सशक्त करता था और न कि इसके परे ।

24. तृतीयतः, उच्च न्यायालय धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब ले सकता था और द्वितीय अपील की सुनवाई के समय पर भी एक या दो अतिरिक्त प्रश्न, जैसी भी दशा हो, बना सकता था । यह सही परिप्रेक्ष्य में, वाद भूमि के स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने के लिए उच्च न्यायालय को समर्थ बनाता है । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया गया ।

25. चतुर्थतः, हमारी राय में, उच्च न्यायालय, बनाए गए प्रश्न की परीक्षा करते समय सरसरी तौर पर स्वामित्व के विवाद्यक पर विचार कर सकता था, जिसे स्वामित्व के विवाद्यक पर किसी सारवान् विधि के प्रश्न बनाने के अभाव में नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, उच्च न्यायालय यह देखने में भी असफल रहा है कि पूर्व-न्याय के विवाद्यक और

स्वामित्व के विवाद्यक, स्वतंत्र विवाद्यक थे और एक विवाद्यक के विनिश्चय से दूसरे विवाद्यक का उत्तर नहीं मिलता है । दूसरे शब्दों में, दोनों विवाद्यक का, उनके क्रमशः अपने गुणागुणों पर एक दूसरे से स्वतंत्र परीक्षा की जानी थी । तथापि, यह संहिता, 1908 की धारा 100(4) और (5) के अधीन यथाउपबंधित दोनों विवाद्यकों पर सारवान् प्रश्नों को बनाने के पश्चात् ही संभव था । तथापि, इस मामले में यह नहीं किया गया था ।

26. पूर्वोक्त उल्लिखित चारों कारणों के प्रकाश में, हमारी यह सुविचारित राय है कि आक्षेपित निर्णय वैधतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है ।

27. चूंकि, उच्च न्यायालय विधि के सारवान् प्रश्न/प्रश्नों को बनाने के अभाव में इसके गुणागुणों पर वादियों के स्वामित्व के विवाद्यक की परीक्षा करने में असफल रहा है, इसलिए, इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए मामले को वापस उच्च न्यायालय के पास भेजा जाना था कि क्या दोनों निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में क्रमशः अपनी अधिकारिता में सही थे कि वादी स्वयं द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों (मौखिक/दस्तावेजी) के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को साबित करने में समर्थ रहे हैं और यदि ऐसा है तो क्या ऐसे निष्कर्ष को कायम रखा जाना चाहिए या नहीं ।

28. पूर्ववर्ती चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है और मंजूर की जाती है । आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । मामले को वाद भूमि पर वादियों के स्वामित्व के प्रश्न पर समुचित तौर पर विधि के सारवान् प्रश्न/प्रश्नों को बनाते हुए, और उसके बाद यह परीक्षा करने के लिए कि क्या उक्त प्रश्न पर दोनों न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि/त्रुटियां हैं या नहीं विधि के अनुसरण में गुणागुणों पर नए सिरे से द्वितीय अपील का विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है ।

29. तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि उपर्युक्त मताभिव्यक्ति के रूप में नए सिरे से अपील का विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय को मामले को वापस भेजने की राय के बारे में गुणागुणों पर कोई संविवाद हमारे विवेक में नहीं है और इसलिए, उच्च न्यायालय को हमारी किसी भी मताभिव्यक्ति के प्रभाव में आए बिना कठोरतः विधि के अनुसरण में अपील का विनिश्चय करेगा ।

30. चूंकि मामला अत्यंत पुराना है, इसलिए, हम उच्च न्यायालय से यह निवेदन करते हैं कि वह अपील का विनिश्चय यथासंभव अधिमानतः इस निर्णय की तारीख से छह माह के भीतर करे ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

[2019] 1 उम. नि. प. 147

दशरथ सिंह चौहान

बनाम

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

9 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे और न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) [सपठित भारतीय दंड सहिता, 1860 की धारा 120ख] – लोक सेवक द्वारा रिश्वत की मांग और प्रतिग्रहण – रिश्वत का धन सह-अभियुक्त द्वारा प्रतिगृहीत किया जाना – दोनों अभियुक्तों के बीच षड्यंत्र की बात साबित न होने पर षड्यंत्र के अपराध के लिए दोषमुक्त किया जाना – सह-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आरोपों से भी दोषमुक्त किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया जाना – अभियोजन पक्ष के लिए लोक सेवक द्वारा "रिश्वत की मांग और प्रतिग्रहण" दोनों अपेक्षाओं को साबित करना आबद्धकर है और जहां केवल एक अपेक्षा को ही साबित किया गया हो, वहां अभियुक्त को दोषमुक्त करना न्यायोचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी दिल्ली विद्युत प्रदाय उपक्रम (जिसे इसमें इसके पश्चात् "डेसू" कहा गया है) का एक कर्मचारी था । सुसंगत समय पर वह निरीक्षक के पद पर कार्यरत था । शिकायतकर्ता-अरुण कुमार (अभि. सा. 1) ने तारीख 28 मार्च, 1995 को अपीलार्थी और डेसू के एक अन्य कर्मचारी राजिन्द्र कुमार के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 के